स्वामी मुक्तानन्द के वचनों पर ध्यान

ईस्टर के उपलक्ष्य में सिद्धयोग सत्संग

ईशा सरदेसाई द्वारा लिखित

सीखें, सीखे हुए को भुला दें, और फिर से सीखें

'स्वामी मुक्तानन्द के वचनों पर ध्यान' के पिछले भाग में, मैंने लिखा था कि बाबा जी जिन सन्त-महामुनि की कहानी सुनाते हैं, वे महात्मा जी इस बात को स्वीकार करते हैं कि उन्होंने अपने शरीर को बहुत यातना-पीड़ा दी और वे अपने शरीर को धन्यवाद देते हैं कि इसके बावजूद उनके शरीर ने उनका साथ दिया, विशेषकर साधना करने के लिए। मैंने यह भी समझाया कि सिद्धयोग पथ पर हमारे गुरुजन हमें मध्यम-मार्ग का अनुसरण करना सिखाते हैं जिसमें हम भगवान को जानने के लिए अपने शरीर के विरुद्ध नहीं, बल्कि *इसके साथ* कार्य करते हैं।

यह एक ऐसा विषय है जिस पर मैं ईस्टर के सम्मान में हुए सत्संग के बाद से काफ़ी मनन करती रही हूँ और मुझे लगता है कि इस पर और विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता है। हम वह उदाहरण देख सकते हैं जो गुरुमाई जी ने अकसर हमें दिया है—प्रकृति का उदाहरण। प्रकृति अपने प्रति सदा सच्ची रहती है; वह जो कुछ भी करती है, इसी उद्देश्य से करती है ताकि वह वैसी बनी रहे जैसा उसे होना चाहिए, ताकि वह उस दिशा में जाए जहाँ उसे जाना चाहिए। उदाहरण के तौर पर, उन कबूतरों को ही देखें जिन्हें 'होमिंग' यानी 'घर लौटने वाले' या 'कैरियर' यानी 'सन्देशवाहक' कबूतर कहा जाता है। दिशाज्ञान की इनकी क्षमता—विशेषकर, घर लौटने की इनकी क्षमता—इतनी सटीक होती है कि सदियों से इनका उपयोग लोगों के सन्देश एक-दूसरे तक पहुँचाने के लिए किया गया है, यहाँ तक कि सैन्य सुरक्षा बलों ने भी इनका उपयोग किया है। इन कबूतरों में वास्तविक अन्दरूनी कम्पास यानी दिशासूचक-यन्त्र होते हैं; ऐसा माना जाता है कि ये कम्पास पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्रों के सम्पर्क में आने से सक्रिय हो जाते हैं। और ऐसा नहीं कि पशु-पक्षियों में केवल इन कबूतरों में ही यह क्षमता है। उदाहरण के लिए, ट्राउट मछली, सामन मछली और समुद्री कछुए, इनकी कुछ प्रजातियों में—और साथ, ही कई प्रकार के प्रवासी पक्षियों में भी—इसी तरह के अन्दरूनी कम्पास होते हैं।

मनुष्य होने के नाते हमारी कार्यप्रणाली कुछ अलग है। जिस 'घर' को हम खोज रहे हैं, यदि वह हमारे अन्दर विद्यमान आत्मा है तो वापसी की हमारी यात्रा इतनी स्वचालित या ऑटोमैटिक नहीं है। आम तौर पर कहें तो जो व्यक्ति हम बन जाते हैं, वह कहीं-न-कहीं जीव-विज्ञान का और हमारे संचित अनुभवों का मिला-जुला असर है यानी हमें जो चीज़ें सिखाई गई हैं और उनके फलस्वरूप हमने अपने बारे में व अपने संसार के बारे में जो समझ बना ली है, हमारा व्यक्तित्व उन सब चीज़ों का एक मिश्रण है। और प्रभावों का यह संयोग, यह मिश्रण हमें *बदल* देता है। विज्ञान कहता है कि यह हमारे मस्तिष्क की रासायनिक क्रियाओं को परिवर्तित कर देता है। भारत के शास्त्र 'संस्कारों' के बारे में बताते हैं; 'संस्कार' पिछले विचारों, कर्मों व अनुभवों के परिणामस्वरूप हमारे मन पर बनी छाप हैं और ये जन्मजन्मान्तरों से संचित हुए होते हैं। ये संस्कार अपने आप नहीं मिटते। बिना हमारे जागरूक प्रयत्न के, हम उस व्यक्ति तक नहीं लौट सकते जो इनके *मूल में* है।

इसीलिए हम साधना करते हैं। इसीलिए हम आत्म-बोध का विकास करने का प्रयत्न करते हैं। मैंने गुरुमाई जी से सीखा है कि साधना निरन्तर प्रक्रिया है, सीखने की, जो सीखा है उसे भुला देने की, और फिर से सीखने की। हमें कार्य करना है, किए हुए को मिटाना या अनकिया करना है, और फिर से करना है। कुछ कार्यक्षमताओं को निखारना होगा। कुछ प्रवृत्तियों को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा। और जीवन जीने के कुछ तौर-तरीक़ों को पुनः जीवित करना होगा, उन्हें पुनः उपयोग में लाना होगा। सौभाग्य से, सिद्धयोग पथ पर, हमारा मार्गदर्शन करने के लिए हमारे पास श्रीगुरु की सिखावनियाँ हैं। हमारे पास श्रीगुरु की कृपा है जो हमारे प्रयत्नों को बल प्रदान करती है। जाग्रत कुण्डलिनी शक्ति के अमूल्य सम्बल से, हम अपने विवेक को पैना कर सकते हैं ताकि हम यह जान सकें कि क्या रखना है, क्या छोड़ देना है और क्या पुनः प्राप्त करना है।

मनुष्य-शरीर में होना यानी इस अत्यन्त जटिल भौतिक व मानसिक संरचना में होना अपने आप में *एक कार्य* है। इस तथ्य से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। तथापि, यह मानव-शरीर की पेचीदा संरचना ही है जो इसे अपने आपमें इतना असाधारण उपहार बनाती है। चूँकि हम एक मानव-शरीर में हैं, इसीलिए हम वह सब कुछ पहचान पाते हैं जो यह है और जो यह करता है—इसीलिए हम इस शरीर का सम्मान कर सकते हैं और इस शरीर के प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर सकते हैं जैसा कि कहानी में महात्मा जी करते हैं। हम यह समझ सकते हैं कि शरीर *के माध्यम से* ही हमारे लिए शरीर के परे जाना सम्भव है, भगवान के स्वरूप की अनुभूति करना सम्भव है।

गुरुमाई जी ने एक प्रसंग सुनाया है जो सन् १९७९ के सितम्बर माह में घटित हुआ था। अपनी तीसरी विश्वयात्रा के दौरान बाबा मुक्तानन्द फ़िलाडेल्फ़िया शहर गए थे। वहाँ कार्यक्रम एक थिएटर में हुआ था जिसमें एक हज़ार से भी अधिक लोग बैठ सकते थे। वह थिएटर लोगों से खचाखच भरा हुआ था, इतना ही नहीं, कुछ लोग बाहर और कुछ तो स्टेज पर भी बैठे थे। उस कार्यक्रम में बाबा जी ने अपने एक मुख्य वाक्य का वास्तविक अर्थ समझाया। यह वह वाक्य था जो वे अपने हर प्रवचन के आरम्भ में कहते थे और आगे चलकर गुरुमाई जी भी इसी वाक्य के साथ अपने हर प्रवचन का आरम्भ करती रही हैं : "बड़े प्रेम से और बड़े सम्मान से सबका हार्दिक स्वागत।" बाबा जी ने समझाया कि जब वे ऐसा कहते हैं तब वे अपने सामने मौजूद व्यक्ति के केवल बाह्य रूप को देखकर यह नहीं कह रहे होते हैं, बल्कि वे उस नीलबिन्दु से यानी चिति के प्रकाश से बात कर रहे होते हैं जो हरेक व्यक्ति के अन्दर होता है; वे उस व्यक्ति के अन्दर मौजूद दिव्य तत्त्व से बात कर रहे होते हैं।

आप कैसे अपने अन्दर के कम्पास को जाँचकर उसे पुनः व्यवस्थित करेंगे यानी कैसे उसे फिर से सेट करेंगे ताकि आप अपने अन्दर उसी दिव्यता को पा सकें? आप किस तरह समय निकालते रहेंगे ताकि आप वसन्त के उमंगोत्साह को अपने श्वास में भर सकें, हवा में गूँज रहे उसके गीत को सुन सकें और उससे मार्गदर्शन पाकर पुनः 'घर' लौट सकें?

© २०२६ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।